सृष्टि–परिकल्पना

डॉ0 अनिल कुमार पोरवाल
ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सृष्टि परिकल्पना को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्य जगत् कहाँ से आया? इसको लाने वाला कौन है? इसका निर्माणकर्त्ता कौन है? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान क्या है? यह सृष्टि-क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त हैं। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में दृष्टिगोचर होती है।[1] इस विषय पर समुपस्थित यह जिज्ञासा विश्व प्रसिद्ध है। यथा–

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जने ना अथा को वेद यत आबभूव।।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
या अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।[2]

अर्थात् यह विविध सृष्टि किससे उत्पन्न हई, किसलिए हुई, इसे वस्तुतः कौन जानता है? अथवा कौन कह सकता है? देवता भी पीछे से हुए फिर जिससे भी यह सृष्टि उत्पन्न हुई उसे कौन जानता है? जिससे द्यावा-पृथिवी बनी वह वृक्ष कौन था और किस वन में था, इसे कौन जानता है? इन सबका अध्यक्ष परमाकाश में है, वही इसे जानता है अथवा वह भी जानता है या नहीं, इस कौन जाने?

इस आशय के साथ यह प्रतिपादित किया गया है कि सर्वप्रथम सत्-असत् की उत्पत्ति हुई और उसके पश्चात् क्रम से पृथिवी, आकाशादि की उत्पत्ति हुई। अदिति के साथ दक्ष प्रजापति हुए। अदिति के अनन्तर देवता, सूर्य, आदित्य, तदनन्तर उनके पुत्र हुए। अदिति ने अपने अष्टम पुत्र मार्तण्ड को अलग करके स्वयं से दूर कर दिया। जहाँ जन्म के समान ही मरण होता है।[3] इसके साथ ही सृष्टि के आरम्भ का इस प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है कि यहाँ न तो असत् था और न ही सत् था, अर्थात् सृष्टयारम्भ में कुछ भी नहीं था। यदि कुछ भी था तो वह केवल शून्य था। सृष्टि अविभाज्य जल से युक्त थी फलस्वरूप यहाँ अन्धकार व्याप्त था। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है–

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीत् गहनं गभीरम्।।[4]

अन्यत्र भी उल्लेख होता है–

तमिद् गर्भ प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।।[5]

---

[1] ऋग्वेद-10.81.4; अथर्ववेद-10.2.24

[2] ऋग्वेद संहिता - 10.129.6-7

[3] ऋग्वेद संहिता- 10.72.2-5, 8; वैदिक देवशास्त्र, पृ0 24-25

[4] ऋग्वेद संहिता - 10.129.1

पुनः तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है-

न द्यौरासीत्। न पृथिवी। नान्तरक्षिम्। तदसदेव सन्मनोऽकुरुत स्यामिति।।[6]

इसी आशय के साथ पाश्चात्य चिन्तकों ने भी यहाँ असत् शब्द के अर्थ को प्रतिपादित किया है-What is not, non-existent, non-being naught. सत् शब्द का अर्थ-That is existent, being aught. वैदिक-साहित्य में सत्-असत् संज्ञाशब्द के रूप में वर्णित है। वेद-उपनिषद्-ब्राह्मण ग्रन्थों में इसी प्रकार की व्याख्या उपलब्ध होती है लेकिन फिर भी पाश्चात्य विचारकों ने उसका अनुसरण नहीं किया है, अतः वे वेदार्थ के महत्त्व को जानने में सर्वदा असमर्थ प्रतीत होते हैं।[7] शतपथ ब्राह्मण के मतानुसार 'असत्' शब्द का स्वरूप इस प्रकार है कि सर्वप्रथम असत् था। ऐसा कथन किसका है कि सर्वप्रथम 'असत्' था। यह कथन ऋषियों का है। वे ऋषि कौन हैं? प्राण ही वे ऋषि हैं। इन ऋषियों ने जो भी सृष्टि उत्पत्ति काल में घटित हुआ, उसका ज्ञान ऋषियों ने तप और श्रम से अर्जित किया।[8]

पुनः शतपथ ब्राह्मण में 'सदसत्' शब्द का स्पष्टीकरण इस प्रकार वर्णित है-

द्वे वाव ब्राह्मणो रूपे-मूर्त चैवामूर्त च। मर्त्य चामृतं च। स्थितं च यच्च। सच्च त्यच्च। तदेतन्मूर्त यदन्यत्। वायोश्चान्तरक्षाच्च। एतन्मर्त्यम्। एतत् स्थितम्। एतत् सत्। अथामूर्तम्। वायुश्चान्तरिक्षं च। एतत्अमृतम्। एतत् यत् एतत् त्यम्।।[9]

अतः असत् ही सत् रूप का परिणाम है। इसी से एक बार अण्ड की परिणति हुई। यह अण्ड कुछ समय अनन्तर दो भागों में विभक्त हुआ-द्यौ और पृथिवी। इस प्रकार जो कुछ भी उत्पन्न होता है वही सूर्य और सूर्य ही ब्रह्म है[10] जैसा कि कहा गया है-

'स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते।'[11]

तेजोमय महानण्ड (हिरण्यगर्भ)

शतपथ ब्राह्मण में हिरण्य का अर्थ ज्योति कहा गया है। यह अविनाशी ज्योति है[12] अर्थात् हिरण्यम् अखण्ड मूल तत्त्व रूप ज्योति है। प्रारम्भ में यह सृष्टि निश्चित ही जल के रूप में अणु के आकार का भूतावस्था में था। उनके द्वारा कामना की गयी। इसका किस प्रकार सृष्टि के रूप में विस्तार हुआ, तब तप के प्रभाव से दग्ध जल से हिरण्यमय रूपी अण्ड की उत्पत्ति हुई। कई वर्षों के अनन्तर उस अण्डे से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, तभी से इस सृष्टि का विस्तार हुआ। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है-

---

[5] ऋग्वेद संहिता - 10.82.6

[6] तैत्तिरीय ब्राह्मण - 2.2.9.1

[7] वेद विद्या निदर्शन, पृ0 38-39

[8] ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ। (शतपथ ब्राह्मण - 6.1.1.1)

[9] बृहदारण्यक - 2.3.1-4

[10] वैदिक देवशास्त्र, पृ0 25

[11] छान्दोग्योपनिषद-319.1-4

[12] ज्योतिर्वैहिरण्यम् ज्योतिरेषोऽमृतं हिरण्यं। (शतपथ ब्राह्मण-6.7)

आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त। कथं नु प्रजायेमहि इति। ता अश्राम्यमन्। तास्तपोऽतपयन्तः। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमयाण्डं सम्बभूव। तदिदं यावत् सम्वत्सरस्य बेला यावत्। पर्यप्लवत। ततः सम्वत्सरे पुरुषः समभवत्। सः प्रजापति।।[13]

अमरकोश के अनुसार, हिरण्यगर्भ का तात्पर्य है-'ज्योतिर्मय पिण्ड' जिस गर्भ में वह है, वह कौन सा पिण्ड है? यह कब उत्पन्न हुआ था? इस विषय पर मनुस्मृति[14] का कथन है-आदि सृष्टिकाल में विविध रचना की इच्छा सेईश्वर ने इसकी उत्पत्ति की। आदिकाल में उद्भूत हुआ यह महाग्नि पिण्ड ही हिरण्यगर्भ के नाम से जाना गया।

श्वेताश्वर उपनिषद् के अनुसार, 'ईश्वर ने आदिकाल में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था।[15] अतः हिरण्यगर्भ ईश्वर से भिन्न किसी भौतिक स्थिति का द्योतक था। स्मृति तथा उपनिषदों की हिरण्यगर्भ सम्बन्धी कल्पना का स्रोत ऋग्वेद में विद्यमान है।

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार सृष्टि के आरम्भ में सर्वत्र जल था अर्थात् यह सलिलात्मक विश्व 'जलमय' था। लेकिन यह जल सामान्य जल न होकर अपितु अत्यधिक शक्तिवान और मातृत्त्व शक्ति से पूर्ण था। यह जल समुद्र के समान गहन तथा गम्भीर 'अम्भ' कहलाया। जैसा कि स्पष्ट है-अम्भः किमासीत्? गहनं गभीरम्[16] अतः जल ही सृष्टि रूपी सत्ता को धारण करने वाला था जिससे हिरण्याण्ड हुआ। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।[17]

इस विषय पर श्रीमद्भास्कराचार्य ने भी सिद्धान्त शिरोमणि में ब्रह्माण्ड रूपी अण्ड का वर्णन किया है। जैसा कि कहा गया है-

भूभूधरत्रिदशमानवमानवाद्या ये याश्चधिष्ण्यगगनेचरचक्रकक्षाः।
लोकेव्यवस्थितिरुपर्युपरि प्रदिष्टा ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम्।।[18]

हिरण्यगर्भ की गतियाँ

हिरण्याण्ड की तीन गतियाँ कही गयी हैं-

1. **पर्यप्लवन**

   इसकी सर्वप्रथम स्थिति अक्ष भ्रमण से हुई अर्थात् कुछ वर्ष पर्यन्त हिरण्यगर्भ चतुर्दिक जल से युक्त हो गया।[19]

2. **प्रसर्पण**

   हिरण्याण्ड में व्याप्त अन्धकार ने प्रसर्पण (अग्रेऽग्रेवर्धनम्) किया।[20]

3. **समेषण**

---

[13] शतपथ ब्राह्मण--11.1.6.1-4

[14] सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविद्याः प्रजाः। अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।। (मनुस्मृति-.1.8)

[15] हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्वम स नो बुद्धया शुभया संयुन्क्तु। (श्वेताश्वर उपनिषद्.3.4)

[16] ब्राह्मणों में सृष्टि विचार-पृ0 32

[17] ऋग्वेद-10.121.1

[18] सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय भुवनकोश, श्लोक 66

[19] शतपथ ब्राह्मण 11.1.6.1.2

[20] प्रजापतिवर्ग इदमेक आसीत्। नाहरासीन्न रात्रिरासीत् सोऽस्मिन्नन्धे तमसिप्रासर्पत्। (ताण्ड्य ब्राह्मण.16.11; तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.9.4)

यह स्थिति हिरण्याण्ड का समेषण या प्रसार करती है अर्थात् गतिरूप में आ जाती है। जैसा कि कहा गया है-

आपो वा इदमग्रे.....त ऊर्मयः सामान्यन्तफाल फालिति। तद हिरण्मयाण्डं समैषत्।[21]

जिस अण्ड में ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशग ाएँ, उल्काएँ, चतुर्दश लोक समन्वित भाव से स्थित हैं, वही ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड के सृजन की क्रिया का वर्णन ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति सिद्धान्त (Cosmogeny) कहलाता है। वेदों तथा उपनिषदों में ब्रह्माण्ड उत्पत्ति का वर्णन बड़े क्रमबद्ध रूप से मिलता है। विश्व की रचना (Origin of the universe) और सृष्टि के विकास (Evolution of the Creation) का पूर्णतः क्रमबद्ध वर्णन वेदों तथा उपनिषदों में है। इसका एक उदाहरण ऋग्वेद का अघमर्षण सूक्त है, जो निम्नवत् है-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसो अध्यजायत।
ततो रा यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।।
समुद्रादर्णवादधि सम्वतसरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।।
सूर्य चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ।।[22]

अर्थात् (अभीद्धात् तपसो) परम् तेजमय परमेश्वर से (ऋतं) ज्ञान और (सत्यं) प्रकृति (Nature) की उत्पत्ति हुई। (ततः समद्रो अर्णवः) उससे परमाणुओं (Atoms) से व्याप्त 'आकाश' (Space) की उत्पत्ति हुई। परमाणुओं से परिपूर्ण आकाश में क्षोभ (Motion) अर्थात् हलचल क्रिया उत्पन्न होने के अनन्तर नक्षत्रों (Stars), सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद में अन्यत्र भी कहा गया है-

देवानां नु वयं जाना प्रवोचाम विपन्यया।
उवथेषु शस्यमानेषु यः पश्चादुत्तरे युगे ।।
ब्रह्मणस्पति रेतारं कर्मार इवाघमत।
देवानां पूर्व्ये युगे सतः सदजायत।।
देवानां युगे प्रथमे सतः सदजायत।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि।।
भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितिर्दक्षो अजायत दशाद्वदितिः परि।।
अदितिर्ह्वजनिष्ट दक्षया दुहिता तव।
तान्देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः।।[23]

---

[21] जैमिनीय ब्राह्मण.3.360.

[22] ऋक् संहिता-10.190.1-3.

[23] ऋक् संहिता-10.72.1-5.

जिस मन्त्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सृष्टि के पूर्व किसी तत्त्व विशेष की उत्पत्ति हुई तदनन्तर दिशाएँ, पृथिवी इत्यादि उत्पन्न हुई। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी ब्रह्माण्डोतपत्ति के सन्दर्भ में निम्न वर्णित है-

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तेन प्रजापतिरश्राम्यत। कथा मिदँ्स्यादिति। सोऽपश्यत्पुष्करपर्ण तिष्ठत्। सोमयन्त्। अस्ति वै तत्। यस्मिन्निदमधितिष्ठती। स वराहोरूपं कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथ्वीमध आर्छत्। तस्या उपहत्योदमज्जत्। तत्पुष्करपर्णेप्रथयत्। यदप्रथयत्। तत्पृथिव्यै पृथिवित्वम्।।[24]

इसमें ''पहले जल था उसके बाद पृथिवी उत्पन्न हुई इत्यादि'' वर्णन हैं। तैत्तिरीय संहिता में अधोलिखित वाक्यों में इसी प्रकार उदक् के पश्चात् वायु और उसके बाद पृथिवी की उत्पत्ति कही गयी है-

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वा चरत् स इमामपश्यत् तां वराहो भूत्वाऽहरात् तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्त सा प्रथत सा पृथिव्यभवत्। तत् पृथिव्यैपृथिवित्वम्।।[25]

परन्तु तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णित सृष्टि-क्रम अत्यधिक सुव्यवस्थित ज्ञात होता है-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिवी ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः।।[26]

अर्थात् उस परमेश्वर और प्रकृति से आत्मान् (कारण-रूप-सत्त्व) और उससे आकाश (Space) उत्पन्न हुआ; आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तत्त्व और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी से औषधियों (वनस्पतियों) की और वनस्पति से अन्न की उत्पत्ति हुई। आचार्य वराहमिहिर ने भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में बृहत्संहिता में अधोलिखित उल्लेख किया है-

आसीत् तमः किलेदं तत्रापां तैजसेऽभवद्बैमे।
स्वर्भूशकले ब्रह्म विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः ।।[27]

अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् पहले अन्धकारमय था। वहाँ अन्धकार का विषय जल में तेजोमय एक सुवर्ण का अण्डा उत्पन्न हुआ; उसके दो भाग स्वर्ग और पृथ्वी रूप हुए, इन दो भागों में से सूर्य, चन्द्र दो नेत्र वाले ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। जबकि सूर्य सिद्धान्त के अनुसार भगवान् सूर्य ने अह ारस्वरूप ब्रह्मा जी को संसार की सृष्टि के लिए उत्पन्न किया।[28] तदनन्तर ब्रह्मा जी के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई तथा नेत्रों से प्रकाशात्मा (प्रकाश स्वरूप) सूर्य की उत्पत्ति हुई-

मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्योस्तेजसां निधिः।[29]

---

[24] तैत्तिरीय ब्राह्मण-1.1.3.

[25] तैत्तिरीय संहिता-7.1.5.

[26] तैत्तिरीय संहिता-2.1 (ब्रह्मवल्ली प्रथमखण्ड)

[27] बृहत्संहिता.1.6

[28] सोऽह ार जगत्सृष्टयै ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः। (सूर्यसिद्धान्त-12.20)

[29] सूर्यसिद्धान्त-12.22

आदिकाल से ही मनुष्यों के पास विश्वोत्पत्ति के रहस्यों को जानने की मुख्यत: दो प्रविधियाँ उपलब्ध थी। आध्यात्मिक विज्ञान-प्रविधि और भौतिक विज्ञान-प्रविधि। आध्यात्मिकशास्त्र में योग तथा दिव्य दृष्टि के द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त होता है। भौतिक विधि (Physical Technology) के द्वारा तो केवल पञ्चज्ञानेन्द्रिय गम्य ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। पञ्चज्ञानेन्द्रियों से इतर विषयों का ज्ञान इस प्रविधि द्वारा नहीं किया जा सकता है। यह ध्रुव सत्य है क्योंकि इस प्रविधि का अधिकांश प्रयोग (ज्ञान) परीक्षणशालाओं (प्रयोगशालाओं) से होता है। जहाँ परीक्षणशालाओं की सीमा समाप्त हो जाती है वहीं से प्रारम्भ होती है अध्यात्म विज्ञान की सीमा। अध्यात्म विज्ञान 'यत पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' के सिद्धान्त के द्वारा ही सौर जगत् को समझा और समझाने का प्रयत्न भी किया। इसी को आधार मानते हुए वेदों, पुराणों तथा अन्य शास्त्रों में ब्रह्माण्डोत्पत्ति ज्ञान को मुख्यत: चार भागों में विभक्त किया गया है-[30]

1. विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति
2. आदिपुरुष या विराट्पुरुष से विश्व की उत्पत्ति
3. ब्रह्मा के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति
4. प्रजापति के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति

1. विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

'इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव.....यदि वा दधे यदि वा न।
योऽस्याध्यक्ष: परमे व्योमन् ऽसो अ देव यदि वा न.....वेद।।[31]

ऋग्वेद में परमेश्वर को सृष्टि का कर्त्ता माना गया है और उसके विभिन्न गुणों को देवताओं की संज्ञा दी गयी है। परमेश्वर के विभिन्न गुणों या देवताओं (Gods or Dieties) के द्वारा विश्व का सृजन होता है। ये देवता सृष्टि के सृजन में भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं और इन सबकी क्रियाओं के सम्मिलित होने पर ब्रह्माण्ड का निर्माण पूर्ण हो जाता है। ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए जिस पदार्थ का प्रयोग किया जाता है वह विश्व-धूलि[32] (Cosmic Dust) होती है। ईश्वर की सृष्टि निर्माणकर्त्ता शक्ति यानि विश्वकर्मा के द्वारा ही तीनों लोकों अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष (Space) और द्यु: लोक (Heavenly Bodies) नक्षत्र, सूर्य, ग्रह, चन्द्र आदि का तथा मनुष्यों और सभी जीव-जन्तुओं तथा निर्जीव पदार्थों का निर्माण होता है।[33] विभिन्न देवता एक परमेश्वर के ही विभिन्न गुण हैं।[34]

2. आदिपुरुष या विराट्पुरुष से विश्व की उत्पत्ति

समस्त विश्व की उत्पत्ति आदि-पुरुष (परमेश्वर) से इस प्रकार बतलायी गयी है वह विराट पुरुष ही समस्त विश्व की परम आत्मा (Supreme Spirit) है; वही समस्त विश्व का केन्द्रक (Nucleus) है, वही समस्त विश्व की आत्मा का विराट शरीर है और उसी से पृथ्वी,

---

[30] भौगोलिक विचारधाराएँ एवं विधि तन्त्र, पृ0 84-85

[31] ऋक् संहिता-10.129.7.

[32] ऋक् संहिता -10.81.82.

[33] ऋक् संहिता -1.12.17.

[34] इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निभ.....मातरिश्वान माहु:। (ऋक् संहिता-1.164.46.)

आकाश, पवन, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य, जन्तु तथा पार्थिव तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है। वही विराट्पुरुष समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में अभिव्याप्त किए हुए हैं तथा इससे पृथक् अमृत स्वरूप भी है-

पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम्।।[35]

उस विराट पुरुष के केवल एक अंश से इस ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ है-

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।[36]

3. ब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति

ऋग्वेद के सूक्तों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्मा अनादि है। ब्रह्मा में स्वयं स ल्प शक्ति होती है। ब्रह्मा ने सृष्टि के सृजन का स ल्प किया; उनका यह स ल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋतं और सत्य (प्रकृति-Nature) की उत्पत्ति हुई।[37]

ऋतं च सत्यं.....तपसौऽध्यजायत्।[38]

.....समुद्रो अर्णव।[39]

उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) (Conciousness or Eternal Law of nature) तथा सत्यं (Eternal existence or truth) की उत्पत्ति हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ (Matter) की रचना हुई।

4. प्रजापति क्रम से विश्व की उत्पत्ति

प्रारम्भ में सृष्टि के मूल तत्त्वों (Elements) ने एक द्युति-अण्डे (Golden-egg) का रूप धारण किया था। उस अण्डे से ज्योतिर्लोक के पिण्डों अर्थात् नक्षत्रों, सूर्य, चन्द्रमा तथा भूलोक (Earth) की उत्पत्ति हुई।

इस विधि के अन्तर्गत यह माना गया है कि सदैव वर्तमान रहने वाले स्वयंभू परमेश्वर[40] ने विश्व की रचना करने के लिए पहले प्रजापति कोबनाया। प्रजापति को हिरण्यगर्भ (Gold-egg) भी कहा गया है। उस सर्वत्र व्याप्त प्रजापति के तेज से द्युलोक या ज्योतिर्लोक (Heaven) तथा पृथ्वी की रचना हुई।[41]

इस ब्रह्माण्ड में विश्व संस्था के रूप में भुवनों की स्थिति को ऋग्वेद में बताते हुए कहा गया है-

त्रिस्रोद्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां एका यमस्य भुवने।

---

[35] ऋक् संहिता, पुरुषसूक्त-.1.90; यजुर्वेद संहिता-31.2; अथर्ववेद-13.1

[36] शुक्ल यजुर्वेद, पुरुषसूक्त, मन्त्र 3

[37] ऋग्वेद संहिता-10.129.3.

[38] ऋग्वेद संहिता-10.190.3.

[39] बृहदारण्यकोपनिषद्-2.1.20.

[40] यजुर्वेद संहिता-13.4.40.8.

[41] ऋग्वेद संहिता-1.121.7.

विराषाट्। आणिं न रथ्यममृताधितस्थुः ।।[42]

''अर्थात् द्युलोक तीन हैं। उनमें से दो सविता के उदर में (और) एक यम के भुवन में ..... (हैं) ..... (चन्द्रतारादि) अमर (उस) पर बैठे हैं।''

गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद प्रसंग में भी लोकों का उल्लेख प्राप्त होता है-

कस्मिन् खलु वायरोतश्च प्रोतश्चेत्यन्तरिक्ष लोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्वन्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोतोश्चेत्यादयः।[43]

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि एक लोक दूसरे लोक के ऊपर स्थित है अर्थात् चतुर्दिक व्याप्त अन्तरिक्ष-लोक में वायुलोक की ही भाँति गन्धर्व लोक और अन्तरिक्ष लोक स्थित था। इसी क्रम में अन्य लोक भी स्थित थे। इसके अतिरिक्त वेदों में द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी का अलग-अलग रूप में वर्णन प्राप्त होता है। ऋक्संहिता में तीन द्युलोकों का निर्देश बहुत से स्थलों पर प्राप्त होता है। कहीं-कहीं द्यु का पृष्ठ भाग अथवा अत्यन्त उच्च भाग स्वर्ग बतलाया है पर अधिकांश स्थानों पर द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी जगत् के तीन भाग कहे गये हैं। द्यौ और पृथिवी के बीच के भाग का नाम अन्तरिक्ष है। वही वायु, मेघ और विद्युत का स्थान है। पक्षी भी उसी में उड़ते हैं।[44] यथा-

नाभ्यां आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पदभ्याम्भूमिर्दिशः श्रोयात्तथा लोकान् कल्पयन्।।[45]

पुरुषसूक्त की इस प्रसिद्ध ऋचा में ये तीन भाग स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हैं। यहाँ विराट पुरुष के मस्तिष्क-नाभि-पाद में क्रमशः ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक से द्यौ-अन्तरिक्ष-भू इन तीन लोकों की उत्पत्ति बतलायी गयी है। अन्यत्र भी इन तीनों लोकों का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप में वर्णित है। यथा-

यः पृथिवीं व्यथमानमदहद्यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे यो द्यामस्तम्नात् सजनास इन्द्रः।[46]

जिसने काँपती हुई पृथ्वी दृढ़ की.....जिसने विस्तीर्ण अन्तरिक्ष व्यवस्थापित किया, जिसने द्यु को धारण किया, ऐ मनुष्यों! वह इन्द्र है-

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थवानि त्रिरुदत्तमद्भ्यः।[47]

हे अश्विनो! आप हमें तीन बार द्युलोक की, तीन बार पृथ्वी पर की और तीन बार अन्तरिक्ष की औषधियाँ दीजिए-

ये महीं रजसो विदुर्विश्वेदेवासो अद्रुहः।
मरुद्भिरग्न आगहि।।[48]

---

[42] ऋग्वेद संहिता-1.35.6.

[43] शतपथ ब्राह्मण-14.6.6.1.

[44] भारतीय ज्योतिष-शङ्करबालकृष्ण दीक्षित-पृ0 23

[45] पुरुषसूक्त.13

[46] ऋग्वेद संहिता-2.12.1, अथर्ववेद संहिता-20.30.2.

[47] ऋग्वेद संहिता-1.34.6.

[48] ऋग्वेद संहिता-1.19.3.

हे अग्नि! जो देवता महान् अन्तरिक्ष में रहते हैं उन सब मरुतों (देवताओं) के साथ तुम यहाँ जाओ। इससे मरुत् (वायु) का स्थान अन्तरिक्ष ज्ञात होता है।

वेदा योवीनाम्पदमन्तरिक्षेण पतताम्।[49]

''जो (वरुण) अन्तरिक्ष में उड़ने वाले पक्षियों का मार्ग जानता है।'' इस से पक्षियों का गगनमार्ग अन्तरिक्ष सिद्ध होता है-

द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठितान्तरिक्षि पृथिव्याम्।[50]

यहाँ यह स्पष्ट है कि पृथ्वी और द्यौ के बीच में अन्तरक्षि है। जबकि अन्यत्र स्थलों में यह वर्णन है कि सूर्य द्युलोक के अत्यन्त उच्च प्रदेश में सञ्चार करता है। यथा-

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।।[51]

ऐ अनुकूल-तेज सूर्य तू.....परम उच्च द्युलोक पर चढ़कर मेरा हृद्रोग..... नाश कर। अधोलिखित वाक्यों में भी यह स्पष्ट है कि सूर्य पृथ्वी से अत्यन्त दूर प्रकाशित होता है-

यथाग्निः पृथिव्या समनमदेवं मह्यं भद्राः सन्नतयः सन्नमन्तु
वायवे समनमदन्तरिक्षाय समनमद् यथा वायुरन्तरिक्षेण सूर्याय ।
समनमद् दिवे समनमद् यथा सूर्यो दिवा चन्द्रमसे समनमन्न-
क्षत्रेभ्यः समनमद् यथा चन्द्रमा नक्षत्रैर्वरुणाय समनमत्।।[52]

अर्थात् अग्नि, पृथ्वी से वायु और अन्तरिक्ष को नत हुआ, वायु अन्तरिक्ष से सूर्य और द्यु को, इसी प्रकार सूर्य द्यु से चन्द्रमा और नक्षत्रों को तथा चन्द्रमा नक्षत्रों को वरुण से नत हुआ। इसका अभिप्राय यह है कि अग्नि पृथ्वी पर है, वायु अन्तरिक्ष के आश्रय में रहता है, सूर्य द्युलोक में आक्रमण करता है और चन्द्रमा नक्षत्रमण्डल में सञ्चार करता है। अतः ज्ञात होता है कि यहाँ चन्द्रमा से सूर्य ऊपर समझा जाता है-

तपोसि लोके श्रितम्। तेजसः प्रतिष्ठा। त्वयीद .....।
तेजोसि तपसि श्रितम्। समुद्र य प्रतिष्ठा .....।
समुद्रोसि तेजसि श्रितः। अपां प्रतिष्ठा। आपः स्थ समुद्रे श्रिता ।
पृथिव्याः प्रतिष्ठा युष्मासु। .....।
पृथिव्यस्यप्सु श्रिता। अग्नेः प्रतिष्ठा। .....।
अग्निरसि पृथिव्याँश्रितः। अन्तरिक्षस्य प्रतिष्ठा।.....।
अन्तरिक्षमस्यग्नौ श्रितम्। वायोः प्रतिष्ठा। .....।
वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः। दिवः प्रतिष्ठा।.....।
द्यौरसि वायौ श्रिता। आदित्यस्य प्रतिष्ठा।.....।

---

[49] ऋग्वेद संहिता-1.25.7.

[50] ऐतरेय ब्राह्मण-11.6.

[51] ऋग्वेद संहिता-1.50.11.

[52] तैत्तिरीय संहिता-7.5.23.

आदित्योसि दिवि श्रितः। चन्द्रमसः प्रतिष्ठा।.....।
चन्द्रमा अस्यादित्ये श्रितः। नक्षत्राणां प्रतिष्ठा।.....।
नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमसि श्रितानि। संवत्सरस्य प्रतिष्ठा।युष्मासु।.....।
संवत्सरोसि नक्षत्रेषु श्रितः। ऋतूनां प्रतिष्ठा।.....।
ऋतवः स्थ संवत्सरे श्रिताः।.....।।[53]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विश्व के पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ (आकाश) ये तीन भाग, वेदों में वर्णित हैं। साथ ही इस बात का भी स्पष्ट निर्देश है कि मेघ, विद्युत और वायु जिस प्रदेश में घूमते हैं वह पृथ्वी के पास है और सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रों का आक्रमण प्रदेश पृथ्वी से बहुत दूर स्थित है।

ऋग्वेद संहिता में कई स्थान पर इस बात का उल्लेख प्राप्त होता है कि यह सभी भुवन सूर्य के आधार पर है। जैसा कि अधोलिखित ऋचा में कहा गया है-

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेकम विश्वा भुवनानि तस्थुः।।[54]

उस एक चक्र वाले रथ में सात (घोड़े) जोड़े जाते हैं (परन्तु) सात नामों का एक ही घोड़ा (रथ) खींचता है। उस चक्र में तीन नाभियाँ हैं। वह अक्षय और अप्रतिबन्ध है और उसी के आधार पर सब भुवन स्थित हैं। अन्यत्र की इसका वर्णन प्राप्त होता है जिसमें सूर्य शब्द तो नहीं उल्लिखित है लेकिन यह ऋचा सूर्य विषयक है-

सनेमि चक्रमजरं विवावृ तउत्तानायां दशयुक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृत्तं तस्मिन्नार्पितं भुवनानि विश्वा।।[55]

जिसका सदा एक ही मार्ग है (और) जो अविनाशी है, वह चक्र घूमता ही रहता है... .....सूर्य का चक्षु.....घूमता रहता है। उस पर सकल भुवन स्थित हैं।

ऋग्वेद में ग्रहों की उत्पत्ति सम्बन्धी विज्ञान भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद[56] के अनुसार सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई उसी तुल्यता से गैलेक्सियों में प्रज्जवलित पिण्डों से ग्रह उद्भूत हुए। ऋग्वेद की ऋचा प्रतिपादित करती है कि आकाश में फैले हुए द्रव्य से मात्र एकत्रकर पुष्ट होते हुए छोटे-छोटे पिण्ड कालान्तर में विशाल आकार धारण कर नक्षत्रों के रूप में उभरे जो परस्पर आकर्षण से बँधे होने से सन्तुलित हुए-

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत।।[57]

यह नक्षत्रों की उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पना है जब नक्षत्र पूर्ण रूप प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। सूर्य से पृथ्वी का जन्ममाना जाता है। ऋचा में 'सुसंरब्धा' पद

---

[53] तैत्तिरीय ब्राह्मण-3.11.1.

[54] ऋग्वेद संहिता-1.164.2.

[55] ऋग्वेद संहिता-1.164.14.

[56] अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः।। (ऋग्वेद संहिता-10.72.4.)

[57] ऋक् संहिता-10.72.6.

से देव का अर्थ पिण्ड है तथा अद: पद से अविकसित का बोध होता है। अविकसित ही पुष्ट होने की क्रिया में हो सकता है। मनुष्य देह की आशातीत वृद्धि से बाल्यकाल, सन्तुलित वृद्धि से युवा व क्षय से वृद्धावस्था का अनुमान होता हे वैसे ही अवस्थाएँ ज्योतिर्पिण्डों की भी होती है। अत: यहाँ अद: पद-भ्रूण पिण्डावस्था का द्योतक है।

ऋग्वेद[58] के अन्य मन्त्र में सूर्य के माध्यम से नक्षत्रों की उत्पत्ति का विज्ञान कहा गया है। सभी नक्षत्र एक ही काल में प्राय: एक सी प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं। पूर्व ऋचा के 'अद:' पद में तथा इस ऋचा के 'अपिन्वत' पद में एक ही भाव है और वह यह है कि लघु भ्रूण पिण्ड की रचना के पश्चात् ज्योतिर्पिण्डों का विस्तार होता है। समुद्र शब्द वेदों में सूक्ष्म तत्त्व से भरे आकाश अथवा ज्योतिर्पिण्डों से परिपूर्ण आकाश के लिए प्रयुक्त होता है।[59] डॉ0 विष्णुकान्त वर्मा महोदय ने सृष्टि-उत्पत्ति का वैदिक-आधुनिक विज्ञान के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया है तथा सृष्टि चक्र में स्थित भूतों का वर्णन प्रस्तुत किया है[60]-

1. **अदिति**

वरुण-मित्र-अर्यमा; कण-प्रतिकण और विकिरण ब्राह्मी स्थिति; मूलसत्ता

(त्रिनाभिचक्रम् अजरम् अनर्व)

(अ) आप:

त्रिवर्णी (वरुण-मित्र-अर्यमा), मूलतत्त्वों की क्रियाशीलावस्था, सलिल, माया; आधुनिक विज्ञान में इस अवस्था का पर्याय नहीं प्राप्त होता है।

(ब) बृहती आप:

(अपाम् बृहद्रूपम्) मूलरूप से उद्भूत जल प्राथमिक रूप में तरल अवस्था में था, आधुनिक विज्ञान में इस स्थिति को प्लाज्मा कहा गया है। रिक्त: - नाभि बाह्यचक्र का अन्तराल।

3. **अपां नपात्** - नाभिकी अवस्था (कास्मिक मैटर)
4. **अर्धगर्भ** - नाभिकी अवस्था, तन्मात्रावस्था।
5. **दृश्यजगत्** - भूतादि अवस्था।

ऋग्वेद में सृष्टि की क्रियात्मक प्रक्रिया में जल प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह व्यवस्था वैज्ञानिकों को भी ज्ञात है। ऋग्वेद में इसके त्रिवर्ग तत्त्वों के रूप में 'आप:' व्यवहार में प्रयुक्त होता है। इसकी त्रिवर्गी शक्तियाँ मित्र-वरुण-अर्यमा इसमें सन्निहित है। मित्र-वरुण प्रकृति के द्रव्य भाग का निर्माण करता है। आधुनिक विज्ञान में कण-प्रतिकण और विकिरण क्रम से मित्र, वरुण और अर्यमा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऋग्वेद के अनुसार उस समय प्रकृति के द्रव्य भाग में सोम का आधिपत्य था। वह सोम-मित्र-वरुण का सम्मिश्रण था। शनै: शनै: प्रकृति का बृहत्स्वरूप 'बृहत्याप:' की अवस्था में परिणत होता गया। 'बृहत्याप:' विज्ञान

---

[58] यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत्।
अत्रा समुद्र आ गुलहमा सूर्यमजभर्तन। (ऋक् संहिता-10.72.7.)

[59] शतपथ ब्राह्मण-14.2.2.

[60] वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य, पृ0 92-93

की बृहदग्निकाण्ड की प्रथम अवस्था थी। यही अवस्था हिरण्यगर्भ के नाम से जानी गयी। इस सन्दर्भ में डॉ0 विष्णुकान्त वर्मा महोदय ने हिरण्यगर्भ की परिभाषा करते हुए लिखा है-

''आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्'[61]

इस मन्त्र के सन्दर्भ में निम्नाि त वचन उद्धृत हैं। यथा-

अग्रे आदि सृष्टिकाले सर्गारम्भे गर्भम् दधाना अभ्यन्तरे वर्तमाने बृहतीरापो: प्रकृतेरवस्थाविशेषो बृहताकारं विश्वं अग्निं अग्निमयं पिण्डं जनयन्ती प्रकटीकुर्वन्ति ततो ह पिण्डमुच्यते हिरण्यगर्भ:।[62]

अत: सृष्टि के ज्ञान को प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण द्वारा नहीं ज्ञात किया जा सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के भाष्य में सायणाचार्य कहते हैं-

''न तावत्प्रत्यक्षेण पश्यन्ति, तदानीं स्वयमेवाभावात् नाप्यनुमातुं शक्ता: तद्योग्ययोर्हेतुदृष्टान्तरयोरभावात्। ''[63]

यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति-पुरुष के संयोग का फल है। डॉ0 राधाकृष्णन महोदय कहते हैं कि यह सृष्टि प्रकृति-पुरुष से सृजित है। यथा-

The whole world even according to it due to the self direction of the absolute in to subject and object Purush and Prakriti.[64]

इसकी पुष्टि करते हुए आचार्य सायण इस प्रकार कहते हैं कि सृष्टि के कारणों को जानने के लिए प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण भी पर्याप्त नहीं हैं अर्थात् सृष्टि का ज्ञान कठिन है। इस हेतु वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारक वैदिक काल से अद्यावधि काल यावत् प्रयासरत हैं, जिसमें यह वैदिक सन्दर्भ अवश्य ही विश्व के सम्भावित रहस्यों को उद्घाटित करने में अत्यन्त सहायक हो सकते हैं।

---

[61] ऋग्वेद-10.121.7

[62] वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य-पृ0 113

[63] ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि विचार-पृ0 15

[64] इण्डियन फिलासफी, वा0 1 उद्धृतम्-ब्राह्मण गन्थों में सृष्टि विचार-पृ0 16